चौथा --- परिच्छेद

-- "अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्"

-- धनंजय.

हिन्दी नाट्य साहित्य के विषय में यह मत अधिक सुनाई पड़ता है कि इसका विकास रंगमंच के माध्यम से नहीं हुआ । पाश्चात्य नाटककारों ने रंगमंच की आवश्यकता के अनुसार अपनी कला को प्रगति के पथ पर अग्रसर करते हुए अनेक नवीन प्रयोग किये हैं । जब हिन्दी का कोई स्थायी रंगमंच ही नहीं बना है तो यहां के नाटकों का विकास स्वाभाविक कैसे माना जा सकता है ? बात तो ठीक है । पर यहां ध्यान देने का एक विषय है । नाटक और रंगमंच का अन्योनाश्रित संबंध है । नाटक का प्रमुख उद्देश्य अभिनेयता ही है। चाहे नाटक के लिए रंगमंच की सुविधाओं की ओर ध्यान दे दिया जाय या रंगमंच के लिए नाटक को उपयुक्त बनावें । दोनों बराबर हैं । प्रगति दोनों प्रकार से संभव है । रंगमंच के आश्रय को कुछ अंशों में लेते हुए हिन्दी में एकांकी नाटक का विकास हुआ है । जिन नवीन साहित्यिक विधाओं का प्रारंभ हमारी भाषा में हुआ था, उन के अनेक नये प्रयोग भारतीय सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक, धार्मिक तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि पर हुए हैं । पर इन प्रयोगों पर पाश्चात्य कला का प्रभाव दृष्टव्य है । उसी तरह रंगमंच के विकास में भी हमारे कलाकारों ने पाश्चात्य रंगमंच से प्रेरणा ग्रहण कर नये प्रयोग किये थे । हिन्दी में रंगमंच के विकास का संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत करना चाहते हैं । उस विवरण से यह अवगत होता है कि डा. रामकुमार वर्मा ने रंगमंचीय साधनों के विकास में कितना योग दिया है ? उन के एकांकी साहित्य में अभिनेयता के प्रमुख गुण पर अधिक ध्यान दिया है कि नहीं ?

जब हमारे नाटककार रचना में प्रवृत्त हुए थे तब यहां पारसी रंगमंच था। बंगला, मराठी और गुजराती रंगमंच भी विकसित हो रहे थे । इस के पहले मुसलमानों के शासन काल में उत्सवों के अवसर पर नाटकों का आयोजन मंदिरों में किया जाता था । रामलीला, और कृष्ण लीला उस समय के प्रधान आयोजन थे । अवध का नवाब, वाजीद अली शा ने अपने दरबार में इन रासमण्डलियों का आयोजन किया था । वे स्वयं कृष्ण का वेश धारण किया करते थे और उन के दरबार की वेश्याएं वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर गोपियां बन जाया करती थी उन के दरबार के एक फ्रेंच दरबारी ने फ्रेंच ओपेरा के सादृश्य पर रासलीला के लिए गीत और नृत्य की रचना की थी । सैकडों संगीतकार तथा नृत्यकार, नर्तकियाँ और गोपियाँ इस में भाग लिया करते थे ।

इन प्रयत्नों में इस हिन्दी रंगमंच पर पाश्चात्य रंगमंच का प्रभाव देख सकते हैं। नवाब के निर्देश में सन् १८५३ में इमानत ने अपने नाटक "इन्दुसभा" का आयोजन नये रंगमंच पर करने का प्रयत्न किया था। नवाब ने प्रमुख पात्र का धारण किया था। इस तरह हिन्दी रंगमंच का प्रारंभ पाश्चात्य प्रभाव तथा दरबारी रंगमंच के प्रभाव से हुआ था। तत् पश्चात् यह पारसी रंगमंच से प्रभावित हुआ था। इस में कोई संदेह नहीं है कि संस्कृत नाटकों कर्पूर मंजरी, धनंजय विजय और मुद्रा राक्षस आदि का अनुवाद करने का प्रयत्न किया गया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने संस्कृत नाटकों के सादृश्य पर कुछ नाटकों का प्रणयन किया है। इस तरह हिन्दी रंगमंच पश्चिम की ओर अग्रसर हुआ था तो हिन्दी नाटक प्राच्य की ओर।(०)

पारसी थियेटर पर तीन प्रकार की दृश्य व्यवस्था होती थी। ऐसे दृश्य जो बड़े दृश्य कहलाये जाते थे। ये दो प्रकार के होते थे। स्थायी और परिवर्तन वाले। रंगमंच को इस तरह अलंकृत किया जाता था जो दृश्यों के लिए उपयुक्त हो, जिस से आवश्यकतानुसार परिवर्तित करने में सुविधा मिलती थी। अर्थात् ये दृश्य दोनों ओर रंगे रहते थे और समयानुसार उलट दिये जाते थे। दूसरे प्रकार के दृश्य खोले होते थे और पर्दों पर चित्रित रहते थे। पर्दे के उठाये या गिराये जाने से दृश्य परिवर्तन होता था। इस रंगमंच की असुविधाओं को दूर करने का प्रयत्न एक ओर नाटककारों ने किया है तो दूसरी ओर अभिनेता कलाकारों का भी इस में सहयोग रहा। पारसीरंगमंच का प्रभाव हिन्दी के प्रथम नाटकों पर दृष्टिगोचर होता है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने अपने साहित्यिक जीवन का प्रारंभ सन् १८६७ में किया। तब तक वैष्णव नाटकों का प्राबल्य पूर्णतः लुप्त हो गया। बंगला के लोक - रंगमंच पर इन के शेष चिन्ह बचे रहे थे। भारतेन्दु के "विद्या सुन्दर" में उन तत्वों के दर्शन होते हैं। भारतेन्दु ने अपने "सत्य हरिश्चन्द्र" नाटक में विभिन्न लोक प्रचलित राग रागिनियों के गीतों का आयोजन किया है जिस में वैष्णव नाटक का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने नाटक की विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया और स्वदूर रंगमंच की नींव डाली थी। इन के नाटकों के कथानक यद्यपि तत्कालिन जीवन के संबंधित हैं और इन के अनुवादों में भी समकालीन सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं की ओर इंगित किया गया है किन्तु फिर भी इन के नाटकों का रूप और लिखने की शैली संस्कृत नाटकों की परंपरा पर आधारित है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र स्वयं रंगमंच के अभिनेता नाटककार थे। वे आराम कुर्सी पर बैठकर लिखने वाले नाटककार नहीं थे जो कल्पना के आधार पर रंगमंच की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। उन के नेतृत्व तथा प्रभाव से एक ऐसे रंगमंच के कलाकारों की मंडली बनी थी,

जिस के सदस्यों ने नाटकों की रचना रंगमंच के लिए की थी और उन नाटकों का अभिनय रंगमंच पर किया था । इस स्कूल के नाटककारों में निम्न-लिखित नाटककार प्रसिद्ध हैं । देवकीनन्दन त्रिपाठी -- सीताहरण, शिवनन्दन सहाय -- कृष्ण सुदामा, अयोध्या सिंह उपाध्याय -- रुक्मिणीपरिणय, राधाचरण गोस्वामी -- सुदामना, बालकृष्ण भट्ट -- दमयन्ती स्वयंवर, वेणी संहार, लालश्रीनिवास दास -- रणधीर प्रेम मोहिनी, राधाकृष्णदास-- दु:खिनी बाला और महाराणा प्रताप, किशोरीलाल गोस्वामी -- मयंक मंजरी और नाट्य संभव ।

यह तो बड़ी आश्चर्य और खेद की बात है कि इस स्कूल के नाटककार भारतेन्दु की मृत्यु के उपरान्त नाटक से विरत हुए हैं । उन की दृष्टि कविता और उपन्यास की रचना में लग गयी थी । नयी साहित्यिक भाषा खड़ी बोली के प्रति उनका अपार आकर्षण रहा था । भारतेन्दु के प्रयत्नों से स्थापित अमूर रंगमंच व्यावसायिक पारसी रंगमंच के विरोध में निर्मित हुआ । पहले ही कहा जा चुका है कि अवध के नवाब के प्रयत्नों से इन्द्रसभा का आयोजन पाश्चात्य रंगमंच के प्रभावों से किया गया । पारसी रंगमंच ने अथेरचित पर्दों और गीतों से युक्त होकर पाश्चात्य रंगमंच का अनुकरण करने का प्रयत्न किया पर वह तत्कालीन पाश्चात्य रंगमंच के विशाल दृष्टिकोण को अपनाने में असमर्थ हुआ । सन् १८७० के आसपास पेस्टोनजी फ्रामजी ने Original Theatrical Company की स्थापना की और सन् १८७७ में खुर्शीद जी मल्लीवाला ने Victoria Theatrical Company का प्रारंभ दिल्ली में किया । इन के साथ व्यावसायिक कंपनियां भी चलती रहीं । New Alfred Company, Old Parsi Theatrical Company, Alexandria Company, Corinthian Company आदि उन में मुख्य हैं ।

भारतेन्दु के पश्चात् भी नाट्य मंडलियों की स्थापना की गई हैं । पं. माधव शुक्ल और उन के मित्रों के द्वारा सन् १८९८ में श्री रामलीला नाटक मण्डली, सन् १९०८ में हिन्दी नाट्य समिति इलाहाबाद में स्थापित हुई । इन अमूर मण्डलियों ने सीता स्वयंवर, महाराणा प्रताप आदि प्रमुख नाटकों का अभिनय किया । सन् १९०९ में काशी में भारतेन्दु नाट्य मण्डली काशी नागरिक मंडली निर्मित हुई और उन्होंने न केवल भारतेन्दु के नाटकों का अभिनय किया बल्कि अन्य नाटककारों के नाटकों का प्रदर्शन भी किया है । पं. माधव प्रसाद शुक्ल व्यावसायिक पारसी रंगमंचीय कंपनियों के बीच सुरुचि-पूर्ण नाटकों को प्रस्तुत करने की सफल चेष्टा की ।

पृष्ट १२६ , शेष फूट नोट : (०)

इन नाट्य मंडलियों में से कुछ ने भारतेन्दु की परंपरा से प्रेरणा प्राप्त की और उन्हीं के आदर्श पर काम किया तो कुछ ऐसी नाट्य मंडलियाँ भी थी जिन्होंने पाश्चात्य रंगमंच से प्रेरित हुई है। हाँ, इतना तो सत्य है कि रंगमंच के अलंकरण, परदों की सजावट पर पारसी रंगमंच के गाढ़े रंगो और कल्पना (Fantacy) का प्रभाव रहा। लेकिन इन नाटकों में सहज अभिव्यक्ति और कवित्वपूर्ण गीतों तथा आदर्शों पर अधिक जोर दिया गया है।

सन् १६२५ के पश्चात् एमचूर रंगमंच का स्वरूप बदलता गया। सभ्य समाज के बड़े लोगों ने इन आयोजनों में भाग लेना त्याग दिया और समझा जाने लगा कि यह रंगमंच केवल विद्यार्थियों के लिए है। विश्वविद्यालयों और कालेजों के प्रभाव से एमचूर रंगमंच प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ। नये शिक्षणात्मक प्रयोग किये जाने लगे। सन् १६२० - २५ के बीच जब पारसी रंगमंच और एमचूर रंगमंच साथ साथ अपने कार्य कर रहे थे, दो प्रकार के नाटक कारों ने नाटक साहित्य में अपना स्थान बना लिया है। आगा हशर काश्मीरी, पं. राधेश्याम पाठक, नारायण प्रसाद, " बेताब " तुलसीदत्त "शैदा" और हरिकृष्ण जौहर के नाम उन दिनों हर एक दर्शक को अवगत हैं। इन लेखकों ने साधारण बोलचाल की हिन्दुस्तानी भाषा में, तुकदार कथोपकथनों, विनोदपूर्ण उपकथाओं तथा बड़े विस्मय जनक दृश्यों का आयोजन किया है। काल के प्रवाह में इनका कोई अस्तित्व शेष नहीं रहा पं. राधेश्याम पाठक का " वीर अभिमन्यु " शेष बचा है जो सच्चे अर्थों में भारतेन्दु के आदर्श को प्रतिध्वनित करता है। दूसरे वर्ग के लोग भारतेन्दु के अनुयायी है जिन में बदरीनाथ भट्ट, पं. माधव शुक्ल आनंद प्रसाद खत्री, जमुनाप्रसाद मेहरा, दुर्गाप्रसाद गुप्त, हरिदास मानिक, पं. माखनलाल चतुर्वेदी के नाम उल्लेखनीय है।

पारसी रंगमंच के लुप्त हो जाने पर सच्चे अर्थों में उत्तर भारत में कोई रंगमंच नहीं था। उस स्थिति में साहित्यिक नाटक लिखे जाने लगे। वे नाटक प्रकाशित तो किये गये पर रंगमंच पर सफल रूप से अभिनीत हो सके। केवल पच्चीस नाटकों के रूप में साहित्य में उन का स्थान बन गया है। कई आलोचक जयशंकर प्रसाद करते हैं। (के नाटकों को इस के लिए उदाहरण के रूप में प्रस्तुत) प्रसाद ने रंगमंच के निर्माण के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया। इतना ही नहीं, उन्होंने भारतेन्दु युग के नाटककारों की नाटकीय शैली पद्धति का भी अनुसरण नहीं किया। उन्होंने भारतेन्दु के उदार भावों देशभक्ति, आदर्श प्रेम, शिवं के प्रति अटूट विश्वास आदि को ग्रहण किया है। लेकिन इन के अभिव्यक्तीकरण में उन्होंने छायावादी का व्यात्मक शैली का प्रयोग किया।

इस तरह परंपरा से विमुखता उनका विशिष्ट गुण है और मौलिक निर्मीकता के मूल में रंगमंच के प्रति उपेक्षा का कारण निहित है। पहला, उन्होंने ऐसी मुहावरेदार संस्कृत गर्भित गंभीर भाषा का प्रयोग किया जिस की तुलना में हरिश्चन्द्र की हिन्दी साधारण मनुष्य की बोली न ठहरती है। दूसरा, उन के पात्रों के चित्रण में अन्तर्द्वन्द्व का प्रधान हाथ है जो इस के पहले केवल० के नायक और प्रतिनायकों के संघर्ष से युक्त नाटकों से भिन्न है। तीसरा, परिस्थितियों के बीच में स्थिति उन के पात्र जीवन के सिद्धान्तों और आदर्शों का विश्लेषण करने लगते हैं और दार्शनिक कौतूहल में से गंभीर चिंतन में डूब जाते हैं। इन तीन नये प्रयोगों के कारण प्रसाद नयी शैली के निर्माता हुए हैं। हम देख सकते हैं कि ऐसे गंभीर, शक्तिशाली क्रियात्मक वातावरण के सृजन करने के प्रयास में योग्य रंगमंच के अभाव की पूर्ति करना कितना कठिन कार्य है। प्रसाद का यह विश्वास था कि उन के नाटकों का पस्तुतीकरण रंगमंच पर असाध्य नहीं था। अगर सुसंस्कृत और सुशिक्षित नट और निर्देशक, आवश्यक धन संपत्ति और साधन एक साथ मिले तो उन के नाटक सफलता के साथ खेले जा सकते हैं। हां उन नाटकों के दर्शकों को भी शिक्षित और सुसंस्कारी होना चाहिए। जो भी हो, प्रसाद केवल अपनी सृजन शक्ति के साधक ही रहे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की भांति उन को रंगमंच पर प्रस्तुत करने का सक्रिय प्रयत्न नहीं किया।

इस के पश्चात् सिनेमा के प्रचार से व्यावसायिक रंगमंच लुप्त हो गये। कालेजों की नाट्य मंडलियों ने यह अनुभव किया है कि जीवन का यथार्थवादी प्रस्तुतीकरण रंगमंच पर आवश्यक है और जीवन के स्वाभाविक कथोपकथनों से युक्त साधारण अनुभवों का चित्री करण अपेक्षित है। इस परिवर्तित दृष्टिकोण के मूल में नीचे का कारण काम करता दृष्टिगोचर होता है। छायावादी लहरों से सिक्त होने के उपरान्त युवक लेखक रोमण्टिक अंग्रेजी काव्यों से इब्सन, शा, चेखोव आदि के समकालीन नाटक साहित्य के अध्ययन की ओर प्रवृत्त हुए हैं। भारतीय राष्ट्रीयता का पथ सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं के विश्लेषण में परिवर्तित हो गया और साहित्य में यह प्रवृत्ति प्रगतिशील आन्दोलन के रूप में दिखाई पड़ी। यह आन्दोलन साम्यवादी सिद्धान्तों से प्रेरित हुआ। फ्रायड के मनोविश्लेषण तथा सेक्स के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण ने नाटकों में प्रेम तत्व का नया रूप प्रस्तुत किया है। इसी समय कहानी की भांति एकांकी नाटक की बड़ी मांग हुई है। सस्ता रंगमंच ने इस नयी विधा का विशेष स्वागत इसलिए किया कि उस के प्रस्तुतीकरण में कम उपकरण ही अपेक्षित हैं और कम समय वांछनीय है।

इन परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप सन् १९३० के आसपास नये ढंग के नाटकों की सृजना की गई है। इन नये नाटकों के मुख्य लक्षण इस प्रकार है ---- १. जीवन का स्वाभाविक प्रस्तुतीकरण.
२. सामाजिक समस्याओं के कारण व्यक्ति के मानसिक क्लेशों का विश्लेषण
३. मिथ्या आदर्शवाद के प्रति हेय भाव। कृपानाथ मिश्र रचित मणि गौस्वामी इस प्रकार के नाटकों में प्रथम नाटक है जो सन् १९२९ में प्रकाशित हुआ। लक्ष्मी-नारायण मिश्र के सिन्दूर की होली, राक्षस का मन्दिर और " मुक्ति का रहस्य " इसी तरह के हैं। लेकिन परंपरा के प्रति इन की चुनौती भी अभाव से रहित नहीं है। विषय वस्तु की दृष्टि से नवीनता का प्रतिपादन इन नाटकों में हुआ है लेकिन रंगमंच की आवश्यकताओं के प्रति उपेक्षा का भाव इन नाटकों की कमी है। यह कमी डा. रामकुमार वर्मा तथा उपेन्द्रनाथ अश्क की एकांकी नाट्य कला में दूर हो गयी। इन दोनों ने एक ओर यथार्थवादी विचारात्मक नाटकों का सृजन किया तो दूसरी ओर रंगमंच पर उन के प्रस्तुतीकरण और प्रेषणीयता के विषय में भी सतर्क रहे और उन्हें दोनों दिशाओं में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

सन् १९३५ के पश्चात् हिन्दी रंगमंच हिन्दी रंगमंच दो मार्गों में विकसित हुआ है। एक तो समचूर रंगमंच जिसकी नींव भारतेन्दु के द्वारा डाली गई और जिस की कड़ी साहित्यिक नाटक से छूटकर पुनः एकांकी नाटक के माध्यम से सफलता प्राप्त कर रहा है। एकांकी नाटक की मांग ऐतिहासिक महत्व रखती है। क्यों कि यह रंगमंच की मांग के कारण विकसित हुई है। इस ने रंगमंच के पुनः निर्माण में विशेष कदम बढ़ाये हैं। दूसरा रंगमंच पृथ्वीराज कपूर का नया व्यावसायिक रंगमंच है जिस ने जनता में सुरुचि को व्याप्त करने का प्रयत्न किया। एक तीसरे रंगमंच का भी उल्लेख करना यहाँ आवश्यक है जिस ने नाटकों के सृजन में, विशेष रूप से एकांकियों के निर्माण में विशेष प्रेरणा दी है। वह है रेडियो। रेडियो नाटक एक नयी साहित्यिक विधा के रूप में विकसित हो रहे हैं। संस्कृत नाटक भी नये रूप में रेडियो की कला के माध्यम से पुनः अवतरित हो रहे हैं। वाचक और वाचिका, जो रेडियो नाटक में कथानक को अग्रसर करने का काम करते हैं। संस्कृत नाटक के सूत्रधार से मिलते-जुलते हैं। संगीत तथा गेयता जो वैष्णव रंगमंच के मुख्य आकर्षक गुण थे, पुनः रेडियो नाटकों में दर्शन दे रहे हैं। इस तरह हिन्दी के रंगमंच के विकास में एक ओर पाश्चात्य तथा पारसी रंगमंच का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है तो दूसरी ओर भारत के संस्कृत नाटकों की परंपरा से प्राप्त गुण तथा वैष्णव नाटकों के तत्व भी दिखाई पड़ते हैं।

आधुनिक रंगमंच नवीन आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित हो रहा है। इस के लिए नाटककारों तथा निर्देशकों के सम्मिलित, सक्रिय प्रयत्न होने चाहिए।

रंगमंच के विकास क्रम में हम ने देखा है कि एक ओर विषयगत प्रतिक्रियाएं हुई तो दूसरी ओर रंगमंच पर प्रस्तुतीकरण के विषय में सजगता की प्रवृत्ति लक्षित हुई है। डा. रामकुमार वर्मा के एकांकी नाटक इन दोनों प्रवृत्तियों से युक्त होकर सफल आधुनिक रंगमंचीय नाटकों की प्रतिनिधि रचनाओं के रूप में हमारे सामने आते हैं। डा. वर्मा ने पाश्चात्य नाटककार इब्सन, शा, आस्कार वाइल्ड आदि की नाट्य शिल्प से प्रेरणा ग्रहण की थी। वे विषय वस्तु के चयन में भी नवीनता के अनुगामी रहे। अतः उन के एकांकियों के कथानक यथार्थ वादी और साधारण जीवन से संबंधित हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की ही भांति डा. वर्मा भी आराम कुर्सी पर बैठकर कल्पना के नेत्रों से रंगमंच के निर्देश करनेवाले कलाकारों में से नहीं हैं। ये स्वयं अभिनेता बनकर बाल्य काल में नाटक खेला करते थे। उन्होंने अनेक नाटकों का निर्देशन कार्य भी किया है।(०) रंगमंच के प्रत्यक्ष अनुभवी होने के कारण वे रंगमंचीय आवश्यकताओं से पूर्णतः परिचित हैं। इन में हम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा जयशंकर प्रसाद दोनों की नाट्य- कलागत विशिष्टताओं को मिलन देख सकते हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटक अभिनेता की दृष्टि से सफल हैं। डा. वर्मा के एकांकी अभिनेय हैं। प्रसाद ने पाश्चात्य तथा भारतीय नाट्य - शिल्प के अद्भुत सम्मिश्रण से नयी शैली का निर्माण किया है। प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा ऐतिहासिक पृष्ट भूमि पर मानवतावदी आदर्शपूर्ण दर्शन तथा चिंतन की कल्पना उन के नाटकों की विशेषता है। डा. वर्मा के एकांकियों में ये ही आदर्श दृष्टिगोचर होते हैं। आन्तरिक द्वन्द्व के सृजन में, भारतीय गौरव को प्रतिष्ठित करने में और सत्यं, शिवं सुन्दरम् से भूषित आशावादी दर्शन को प्रस्तुत करने में डा. वर्मा प्रसाद के समकक्ष ठहरते हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र में जो साहित्यिक संश्लिप्त शैली की कमी है वह पूर्ण रूप से प्रसाद में निहित है और प्रसाद में रंगमंचीय आवश्यकताओं की पूर्ति का जो अभाव है वह भारतेन्दु में प्राप्त होता है। इन दोनों की पूर्णताओं से भूषित होकर डा. रामकुमार वर्मा की एकांकी कला विकसित हुई है।

---

(०) जब हाई स्कूल में आया तो बद्रीनाथ भट्ट के चन्द्रगुप्त में "मन संतोष- में सुख मान" गीत गाने वाले भिक्षुक का अभिनय किया। --------------- श्री माखनलाल चतुर्वेदी लिखित "कृष्णार्जुन युद्ध" में मेरा श्री कृष्ण का अभिनय सर्वश्रेष्ठ समझा गया और वह पार्ट मुझे आज भी याद है। --------------- मैं अपने मित्रों और भाइयों के साथ नवयुवक मण्डली से नाटकों का आयोजन करता था। एक बार मैंने राधेश्याम कथा वाचक लिखित परिवर्तन नामक नाटक में श्यामलाल का अभिनय किया ------- मेरा अभिनय अत्यन्त स्वाभाविक और जनता पर प्रभाव डालनेवाला समझा गया। डा. वर्मा दीपदान पृ. २२ - २४.

इन के नाटकों में साहित्यकता और अभिनय शीलता दोनों तत्व उपलब्ध हैं। इन के सारे ऐतिहासिक नाटक प्रसाद के नाटकों की सुरुचि तथा साहित्यकता लिये हुए है। " चारुमित्रा " " शिवाजी " कौमुदी महोत्सव, " श्री विक्रमादित्य " आदि उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये जा सकते है।

रंगमंचीय एकांकी के पुनरुद्धार करने में डा. वर्मा ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने रंगमंच की ओर लेखकों और दर्शकों का ध्यान आकृष्ट किया है। उनका कथन है ----- " मैं नाटकों का महत्व उपन्यास की भांति पढ़ लेने तक ही नहीं मानता वरन् सार्वजनिक रूप से उस के अभिनय में मानता हूं। अभिनय के लिए रंगमंच तो नितान्त आवश्यक है। रंगमंच का अर्थ केवल एक स्टेज या अभिनय स्थान नहीं है। " रंगमंच " एक राजनीतिक या सामाजिक कलात्मक संस्था है, जो नाटक और अभिनय के प्रत्येक क्षेत्र में संपूर्ण ज्ञान वितरित कर सके। राज्य की ओर से या समाज के द्वारा प्रचुर दान से वह पूर्ण संपन्न हो, और विश्वविद्यालय की भांति वह विद्यार्थियों को रंगमंच के ज्ञान में पूर्ण रूप से दीक्षित कर सके। ---------- रंगमंच राष्ट्र के नाट्य साहित्य का पूर्ण उत्तर दायित्व ले सके। रंगमंच के ज्ञान से रहित हमारे यहां जो नाटककार नाटक रचना करते हैं, उन्हें वस्तु उपन्यास ही लिखना चाहिए, नाटक नहीं। (०)

डा. वर्मा ने अपने एकांकियों के निर्माण में उपर्युक्त विचारों को मूर्त रूप प्रदान किया है। नाटक की रचना करते समय उन को दर्शकों और अभिनेताओं का ध्यान रहता है। " रूपरंग " एकांकी संग्रह उन अभिनेताओं को भेंट किया गया है जो उन नाटकों का अभिनय करेंगे। उन्होंने एकांकियों की रचना विशेष रूप से प्रयाग विश्वविद्यालय के होस्टलों में नाना अवसरों पर अभिनय के लिए की है। (१) इस तरह विश्वविद्यालय के रंगमंचों की मांग की पूर्ति करने के लिए जो नाटक लिखे जाते हैं उन में अभिनयात्मक तत्त्व का आना स्वाभाविक है। उन नाटकों का अभिनय सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इस तरह उन्होंने अभिनेता को प्रधान स्थान देकर एकांकियों की रचना की है।

तीसरे परिच्छेद में हम ने बताया है कि डा. वर्मा के एकांकी प्रस्तुतीकरण के माध्यम की भिन्नता के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं।

---

(०) डा. ब रामकुमार वर्मा --- वर्तमान नाट्य साहित्य की आवश्यकताएं हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटक पृ. १३६.

(१) डा. रामकुमार वर्मा -- रेशमी टाई ब की भूमिका।

१. रंगमंचीय एकांकी २. रेडियो एकांकी इन दोनों विधाओं के प्रमुख भेद पर ध्यान देने से यह विदित होता है कि इन दोनों का एक दूसरे मे परिवर्तित करना कठिन है। रंगमंचीय नाटक दृश्य है तो रेडियो नाटक केवल श्रव्य मात्र हैं। कुछ लोगों के विचार के अनुसार स्टेज के नाटक कुछ हेर फेर केसाथ रेडियो के उपयुक्त बनाये जा सकते है। (२) बी.बी.सी. के एक प्रसिद्ध नाटककार का अनुभव है कि रंगमंच के के लिए लिखा गया नाटक कदाचित ही रेडियो पर सफल हो। (३) रंगमंचीय तथा रेडियो एकांकियो में पर्याप्त भिन्नता है। उपर्युक्त दो मतों के बनने में उन की भिन्नता ही काम कर रही है। रेडियो के आगमन से श्रव्य नाटकों अथवा एकांकियों की मांग हुई तो अपनी पूर्व रचित रचनाओं को रेडियो पर प्रसारित करने का प्रयत्न लेखकों ने किया है। उस समय को सन्धि युग कह सकते हैं। क्यों कि रेडियो नाटकों के शिल्प का विकास उस समय तक नहीं हुआ। आर्थिक दृष्टि से लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से भी ऐसे नाटकों का प्रणयन किया गया है जो कुछ परिवर्तनों के साथ रंगमंच तथा रेडियो के लिए उपयुक्त हो सके लेकिन रंगमंच के सभी नाटक रेडियो पर सफल कैसे बनाये जा सकते हैं ? उसी तरह रेडियो के सफल नाटक बवठके० वए कैस जव०सकते०है रंगमंच पर कैसे प्रस्तुत किये जा सकते है ? डा. रामकुमार वर्मा ने " रजतरश्मि " पुस्तक की भूमिका में इन दोनों की भिन्नता का विवेचन इस प्रकार किया है --- " रंगमंच " पर अभिनीत होनेवाले एकांकी नाटक मेंऔर रेडियो द्वारा प्रस्तुत एकांकीनाटकों में बड़ा भेद है। दोनों की कलात्मकता भी अलग अलग है। रंगमंच परनाटक प्रस्तुत करनेवालों की जिम्मेदारी अधिक है। उसका कारण यह है कि रंगमंच पर प्रदर्शित होनेवाले नाटकोंका वातावरण मंच की सजावट वेषभूषा या दृश्यमान कौतूहल प्रदर्शन से सहज ही हृदयंगम हो जाता है। रेडियो पर नाटक के समस्त वातावरण को हृदयंगम् कराने का एक मात्र उत्तरदायित्व ध्वनि पर है। रेडियो में समस्त इन्द्रियो के नूपर नाद को सुनने के लिए जैसे कृष्णा के नेत्र और मन सिठ० सिमट कर कान में ही आ गये थे। महाकवि नन्ददास ने अपनी रास पंचाध्यायी में लिखा है --

तिन के नूपर नाद सुने जब परम सुहाये।
तैबै हरि के मन नैन सिमिट सब श्रवननि आये ।।

मंच पर उपस्थित किये जाने वाले एकांकी में प्रतिन्यास लिखने की आवश्यकता है जिस से रंगमंच पर आवश्यक व्यवस्था हो सके। पात्रों की अवस्था और वेषभूषा का निर्देश आवश्यक है जिस से व्यक्तित्व की रूप रेखा स्पष्ट हो सके। नाटक के उपयोग में आनेवाली वस्तुओं की स्थिति और उनका विवरण देना आवश्यक है।

अभिनय के अंतर्गत मुख पर आनेजाने वाले भाव और अंग संचालन की व्यवस्था देनी आवश्यक है। पात्रों द्वारा उठना, बैठना, घूमना, आगे बढ़ना, पीछे हटना, लंगडा कर चलना आदि कार्यों के निर्देश की आवश्यकता है। संकेत करना, कान में कहना, मुस्कुराना, भौंहों पर बल पड़ना, ठोकर खाना, हाथ से बुलाना, मन ही मन पत्र पुस्तक या अखबार पढ़ना आदि का अभिनय स्पष्ट किया जा सकता है --- रेडियो पर अभिनय करनेवालों को पात्र के समस्त व्यक्तित्व, अवस्था और आत्मा को कंठ से ही ध्वनित करना पड़ता है।"

इस से स्पष्ट है कि रंगमंच पर आंगिक अभिनय का प्राधान्य होता है और रेडियो पर इस का नितांत अभाव है। रंगमंचीय एकांकी नाटकों में कार्य काल तथा स्थान तीनों संकलनों का निर्वाह अत्यन्त आवश्यक है। उन के लिए संकलन त्रय का निर्वाह किसी न किसी मात्रा में करना पड़ता है। रेडियो में कार्य संकलन के निर्वाह से वांछित प्रेषणीयता की सृष्टि की जा सकती है। शेष दो संकलनों की उपेक्षा की जाने पर भी नाटक की प्रभावोत्पादकता में किसी प्रकार का अंतर नहीं पड़ता। स्वगत कथन और स्वप्न संभाषण रंगमंच पर अस्वाभाविक लगते हैं लेकिन रेडियो नाटक में सहज ही प्रतीत होते हैं। आधुनिक नाटक में रंगमंच पर नाटकीय पात्रों के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति का प्रवेश वर्जित है। रेडियो नाटक में किसी अन्य व्यक्ति का प्रवेश स्वाभाविकता के साथ किया जा सकता है। उस में कथाकार या वाचक वर्णनों के द्वारा नाटक की पूर्वापर घटनाओं को एक सूत्र में संयोजित करता है। उदाहरण के रूप में डा. राम कुमार वर्मा के रेडियो एकांकी को प्रस्तुत कर सकते हैं। उन का " ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया " सच्चे अर्थों में रेडियो एकांकी है। एकांकी होने के कारण, इस में, एक ही दृश्य में कबीर का समस्त जीवन - जन्म से मृत्यु तक, वर्णित किया गया है। इस का प्रारंभ कबीर के गीत " झीनी झीनी बीनी चदरिया " से होता है। कथाकार कबीर का परिचय इस प्रकार दे देता है --- भक्त कबीरदास का जन्म सं. १४५५ में हुआ। माता, पिता, नीमा और नीरू। जाति के जुलाहे थे। इन के जन्म के संबंध में अनेक बातें कही जाती है। अच्छा, उन के आधार पर आप शिशु कबीर के दर्शन कीजिए " एक भक्त ब्राह्मण अपनी विधवा पुत्री गौरी के साथ स्वामी रामानन्द के दर्शन आते हैं और रामानन्द " पुत्रवती भव " का आशीर्वाद देते हैं।

00000 137 पृ. का शेष, (२) उदयशंकर भट्ट -- कालिदास भूमिका पृ. ६.

137 (३) It may seem a certain amount of disappointment to say loudly that it is only in very exceptional cases that a play written for the theatre is likely to make good material for broad-casting. ... Foreword P. ix

इस घटना को नाटक के रूप में प्रस्तुत किया गया है , पुन: कथाकार आगे की घटना से इस की कड़ी को जोड़ देता है । वह कहता है --- " लेकिन काल पाकर महात्मा रामानन्द जी का आशीर्वाद सफल ही हुआ और गौरी पुत्रवती हुई । ----------

---------- बेचारी गौरी ने समाज के भय से अपने नवजात सुन्दर शिशु को काशी के लहरतारा तालाब के किनारे छोड़दिया । गौरी का विलाप और क्रन्दन श्रोता लोग सुनते हैं। कथाकार फिर इस की सूचना देता है कि जुलाहे नीरू और उस की पत्नी नीमा ने उस बच्चे का पालन पोषण किया । इस के पश्चात् वह कबीर के गुरू रामानन्द के संबध में कहता है " किन्तु स्वामी रामानन्द किसी शूद्र या विधर्मी को अपना शिष्य नहीं बनाना चाहते थे ---- ब्रहम मुहूर्त में ही पंच गंगा घाट की सीढ़ियों पर कबीर लेटे रहे । जब स्वामी रामानन्द जी स्नान कर लौट रहे थे, वे राम मन्त्र पढ़ते चले आ रहे थे ।" रामानन्द और कबीर के वार्तालाप के पश्चात् फिर कथाकार कहता है कि इस प्रकार कबीर स्वामी रामानन्द के शिष्य बने । तदुपरान्त काजी और कबीर का वार्तालाप होने के बाद कथाकार बताता है कि " इस प्रकार कबीर साहब ने अपने सच्चे धर्म के प्रचार से हिन्दू और मुसलमान दोनों को सीधा रास्ता दिखाया । " आगे चल कर कबीर रहीम और रामदेव का वार्तालाप होताहै । इस के प्रश्चात् कथाकार कहता है --- हिन्दू मुसलमान तथा ब्राहमण शूद्र का भेद दूर कर संवत् १५५१ में अपनी जीवन लीला समाप्त की और अपनी वाणी को ऐसी अमरता प्रदान की कि वह आज भी संसार के कोने-कोने मे गूज रही है । " तानपूरे में कबीर के गीत " झीनी झीनी बीनी चदरिया " से एकांकी समाप्त होता है ।

इस प्रकार इस एकांकी में कथाकार घटनाओं की शृंखला को बनाता है । संस्कृत नाटकों के विष्कम्भक और प्रवेशक का कार्य, रेडियो नाटक का कथाकार करता है । इस नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत करना कठिन ही नहीं , असाध्य है । जीवन की संपूर्ण घटनाओं को आधे घंटे में रेडियो नाटक के रूप में ही प्रस्तुत किया जा सकता है । रंगमंच पर कथाकार का प्रवेश अस्वाभाविक प्रतीत होता है । इस तरह रंगमचीय एकांकी से रेडियो एकांकी भिन्न है। एक हद तक रंगमचीय एकांकी में श्रव्य तत्वों की प्रधान्नता देते हुए कुछ परिवर्तन किये जा सकते हैं और उसका प्रसार रेडियो पर किया जा सकता है । पर हमारे विचार से रेडियो एकांकी को रंगमंच परप्रस्तुत करना असंभव है । रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिए उस में इतने परिवर्तन करने पड़ते है कि उसका रूप पूर्णत: बदल जाता है । एक

इन दोनों को एक दूसरे के रूप में परिवर्तन करना कठिन है। हां रेडियो पर उपन्यासों और कहानियों के रूपान्तर प्रसारित किये जा रहे हैं। रंगमंचीय एकांकियों का प्रसार भी उसी भांति किया गया है। लेकिन अब रेडियो रूपक के शिल्प का भी विकास हुआ है। नाटककार केवल रेडियो के लिए रचना करने लगे हैं।

डा. रामकुमार वर्मा के रंगमंचीय एकांकी भी रेडियो में प्रसारित किये गये हैं। उन्होंने ऐसे नाटकों की सृजना भी की है जो दोनों के लिए उपयुक्त हो। उन्होंने रजतरश्मि की भूमिका में यह स्पष्ट किया है कि उन्होंने उस संग्रह में संगृहीत एकांकियों की रचना इस ढंग से की कि वे रंगमंच और रेडियो दोनों के द्वारा सफलतापूर्वक अभिनीत किया जा सके। जो नाटक रेडियो के लिए विशेष रूप से रचे गये हैं उनके प्रतिभास नहीं दिये गये हैं। पर प्रतिभास के न होने पर भी कुशल संगीतज्ञ नाटक के वातावरण और वस्तु की परिस्थिति के अनुसार रंगमंच की उचित व्यवस्था कर सकता है। लेकिन इस के पश्चात् उन्होंने केवल रेडियो नाटक के शिल्प के अनुकूल रचनाएं की है।

यद्यपि इन की रचना का प्रधान क्षेत्र ऐतिहासिक रहा और ऐतिहासिक नाटकों की रचना में इन्हें अधिक सफलता प्राप्त हुई है। फिर भी जैसे जब ये लिखने पर आते हैं तो कौन-सा विषय है जिसे उन की कल्पना तथा कलाचातुर्य एक सुन्दर और उत्कृष्ट रचना का रूप नहीं दे देता? इन के सामाजिक या पारिवारिक एकांकी रेडियो की टेक्नीक से निर्मित हैं। हास्य रस से सिक्त एकांकी "फैलट हैट" दर्जनों बार रेडियो पर प्रसारित हो चुकने के पश्चात् भी आकर्षक है। डा. वर्मा की यह धारणा सत्य ही है कि "ऐतिहासिक नाटकों की अपेक्षा सामाजिक या पारिवारिक नाटक ही रेडियो पर अधिक सफल होंगे। ऐतिहासिक नाटकों में रंगमंच पर पृष्ठ पट या वेशभूषा तो सहज ही उपस्थित की जा सकती है जो रेडियो पर संभव नहीं है।" (०) ऐसा होने पर भी इन के ऐतिहासिक एकांकी भी रेडियो पर प्रसारित किये जा चुके। "संपत्किरण" संग्रह के एकांकियों में "फैलटहैट" "छोटीसी बात", "आंखों का आकाश" आदि एकांकी स्टेज के लिए लिखे तो गये हैं पर रेडियो पर इनका प्रसार सफलता पूर्वक किया गया है। "सप्त किरण" संग्रह सन् १९४७ में प्रकाशित हुआ है। उस समय तक डा. वर्मा की रचना के मूल में यह प्रवृत्ति रही कि उन के एकांकी रंगमंच और रेडियो दोनों के लिए उपयुक्त हों। सन् १९५० से इन्होंने जिन एकांकियों का प्रणयन किया है वे नाटक रेडियो शिल्प की दृष्टि से अधिक अनुचित और प्रभावशाली है। इसका कारण यह है कि वे रचनाएं मुख्य रूप से अन्य प्रसारण के लिए रची गयी है।

---

(०) डा. पद्मश्री रामकुमार वर्मा --- रजत रश्मि -- पृ १३.

उन में ध्वन्यात्मक मूल्यों का विशेष ध्यान रखा गया है और शैली अधिक सरल, प्रभावोत्पादक और संकेतात्मक बन गई है। सन १९५५ में प्रकाशित "दीपदान" में संगृहीत पांचो एकांकी दीपदान, भाग्य नक्षत्र, कृपाण की धार, बादल का रहस्य और मर्यादा की वेदी, उत्तम रेडियो एकांकी हैं।

डा. वर्मा का ध्यान रंगमंच तथा अभिनयशीलता के प्रति प्रारंभ से ही सजग रहा और उन के "रजत रश्मि" संग्रह के आरंभ में उन का यह निवेदन इस का साक्षी है। "इन एकांकी नाटकों के अभिनय में किन किन दर्शकों का कुतूहल कब नेत्रों की भाषा बने, यह नहीं कहा जा सकता। इसलिए प्रत्येक दर्शक से प्रार्थना है कि "परदा उठने के पूर्व ही आप अपने स्थान पर शान्तिपूर्वक आसीन रहें।" इस प्रार्थना में एकांकी नाटक के प्रमुख तत्त्व कौतूहल पर प्रकाश डाला गया है। कुशल तथा सफल अभिनय के कारण नाटक के अवसर उस कौतूहल के वशीभूत हो कर दर्शक रसानन्द ले सकते हैं।

अब हम डा. वर्मा के इन दोनों प्रकार के रंगमंचीय तथा रेडियो एकांकियों की विशेषताओं का पृथक्-पृथक् विवेचन प्रस्तुत करेंगे। रंगमंचीय एकांकी नाटकों की विशेषताएं:--- इन के रंगमंचीय नाटकों के पहले संयोजकों को दृष्टि में रखकर विस्तृत प्रति-यास लिखे गये हैं। इस तरह के विस्तृत प्रतिन्यास लिखने की प्रवृत्ति पाश्चात्य कलाकारों में पहले पहले देखी जाती है। यद्यपि हमारे देश में संस्कृत का रंगमंच था और हमारे नाटकों के प्रारंभ में भी रंग की सूचनाएं दी जाती थीं पर आज के प्रतिन्यासों की भांति वे सूचनाएं लंबी नहीं थीं। विस्तृत प्रतिन्यास लिखने में एक प्रमुख उद्देश्य हमारे नाटककारों में यह देखा जाता है कि उन प्रतिन्यासों के बल पर पाठकों की कल्पना-चक्षुओं के सामने सारे दृश्य दृश्यमान हो जावें और दृश्य नाटक का रसानन्द कल्पना के पथ पर प्राप्त कर सकें। अर्थात् अभिनेय नाटक पठनीय भी बने। डा वर्मा के प्रत्येक एकांकी के आरंभ में हमें विस्तृत प्रतिन्यास मिलते हैं। डा. वर्मा बचपन में अभिनेता थे और निर्देशक भी थे। अतः उन के मस्तिष्क में रंगमंच की प्रत्येक वस्तु वर्तमान रहती है। रंगमंच पर ऐसी वस्तु के लिए स्थान नहीं रहता जो नाटक की कथा वस्तु से संबंध न रखती हो। प्रत्येक छोटे-बड़े से अंश (Detail) पर ध्यान देना पड़ता है। डा. वर्मा के रंग निर्देश अनुभव के आधार पर रचे गये हैं। अतः उन में किसी प्रकार की कमी लक्षित नहीं होती। (०)

---

(०) अभिनय तथा अभिनय के आयोजनों से मेरा निरंतर संबंध रहा है। रंगमंच की सारी असुविधाओं से मैंने निरंतर संघर्ष किया है अतः जब कभी नाटक की कल्पना मेरे हृदय में आती है तो रंगमंच मेरे मानस-पटल पर पहले ही आ खड़ा होता है और मेरे कथा वस्तु की मांग करता है। फल यह होता है कि मशीन के पुर्जों की अथवा कथा वस्तु की भांति मेरी कथावस्तु अथवा पात्र आप-से-आप आकर यथास्थान जा सिमटते हैं और फ्रेम में जड़े हुए चित्र की तरह मेरे नाटक भी कल्पना पृष्ठों पर उतर आते हैं। ---- डा. रामकुमार वर्मा --- दीपदान पृ. २५.

डा. वर्मा भावुक कवि भी है। अत: उन के रंगमंचीय निर्देश काव्यात्मक होते हैं। इन मे काव्य की मधुरिमा पूर्णत: फूट पड़ी है, उपमाओं का परिष्कृत प्रयोग मिलता है। नाटकीय संकेत लिखते समय डा. वर्मा अपने नाटक के हर एक दृश्य की भौगोलिक तथा वातावरण संबंधी प्रति क्रियाओं के विषय में पूर्णत: अभिज्ञ हो जाते हैं। उन्हें न केवल उस स्थान का ज्ञान ही नहीं होता, जिस में दृश्य निश्चित है, अपितु उस स्थान के आसपास की समस्त भौगोलिक स्थिति का भी। यों तो हर एक नाटककार को उपर्युक्त परिज्ञान का होना अत्यन्त आवश्यक है। पर ऐतिहासिक नाटकों के लेखक के लिए इस परिज्ञान का होना अनिवार्य होता है। डा. वर्मा ऐतिहासिक क्षेत्र में ख्याति प्राप्त नाटककार हैं। उन के किसी भी ऐतिहासिक एकांकी के रंग संकेतों पर दृष्टिपात करें तो विदित होता है कि उनका रंगसंबंधी ज्ञान कितना गंभीर है। "चारुमित्रा" नाटक के संकेत उदाहरण के रूप में ले सकते है। कथावस्तु से संबंधि संबंधित विवरण देते हुए तत्कालीन वातावरण से युक्त चित्रण किया गया है। हर एक छोटे विषय पर इतना ध्यान रखा गया है कि अशोक कालीन राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक तथा भौगोलिक पृष्ठभूमि अपने में पूर्ण होकर दर्शकों के सामने उपस्थित होती है। रंगसंकेत में डा. वर्मा ने पहले अशोक की कलिंग चढ़ाई के समय की ऐतिहासिक स्थिति का उल्लेख किया और तत् पश्चात् अशोक के बाह्य और अन्तरिक चरित्र पर प्रकाश डालते हुए उनका परिचय प्रस्तुत किया है। "उनका व्यक्तित्व दृढ़ और तेजस्वी है। ऊंचा कद और भरे हुए अंग, जिन पर शास्त्र सजे हुए हैं। एक बड़ी ढाल उन की पीठ पर कसी हुई है और तलवार उन के हाथ का भाग बन गया है। सुन्दर मुखाकृति जिस में अभिमान और उत्साह की चित्र शक्ति की रेखाओं से खिंचा हुआ है। मस्तक पर शिरस्त्राण और कानों में कुंडल, भौंहें मिली हुई और ओठ कसे हुए। शरीर पर सटा हुआ वस्त्र। चाल में सतर्कता और दृढ़ता वे अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से ही कुछ प्राणों तक विपक्षी को अप्रतिम बना देते हैं। वे दया के अनुकूल नहीं -- क्रूरता के प्रतिकूल नहीं।" इस के बाद भौगोलिक विवरण यों प्रस्तुत किया गया --- "उनका शिविर इस समय गोदावरी तट पर है। दूर पानी के बहने और शिलाओं से टक्कर खाने की आवाज है। शिविर के चारों ओर लताओं और गुल्मों का जाल है। समस्त वातावरण में शान्ति और सौन्दर्य है, जो कभी किसी सैनिक की ललकार से या पक्षी के तीखे स्वर से भंग होता है लेकिन फिर शान्त होजाता है ----- जैसे एकांकी मार्ग मे चलती हुई कोई स्त्री ठोकर खाने से चीख उठे, लेकिन फिर अपने मार्ग पर चलने लगे। शिविर के पर्दों पर शस्त्र त्रिकोण में या लंबी रेखाओं के रूप में सजे हुए हैं। जगह जगह युद्ध के वस्त्र टंगे हुए हैं।" शिविर का वर्णन करते हुए तत्कालीन वैभवों की ओर संकेत किया गया है।" शिविर के कण कण में ऐश्वर्य बरस रहा है।

स्तंभों में स्वर्ण लताएं लिपटी हैं और उन पर रत्नों के फूल हैं जो प्रकाश में ज्योति-मंडल बन जाते हैं। नीलम और मोतियों की फालरों से कक्ष की दीवारों पर समुद्र की फेनिल लहरों का आभास उत्पन्न किया गया है। पीछे एक महराब है। जिस के दोनों ओर एक एक हाथी घुटने टेके हुए हैं। चारों ओर दीपस्तंभ हैं जिन में दीपक जल रहे हैं और उन्हीं स्तंभ में फूल के आकार के पात्र से सुगंध धूम निकल रहा है।"

जैसे पहले ही कहा जा चुका है, जीवन के कौतूहल से प्रेरित होकर डा. रामकुमार वर्मा नाटकों की रचना में प्रवृत्त होते हैं पर उन के कवि के संस्कार, कार्य व्यापार की अभिव्यक्ति को काव्य मय बना डालते हैं। उपर्युक्त रंग संकेतों के ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा चारित्रिक विवरण में भी उन के कवि संस्कारों को बोलते हुए देखते हैं। यह प्रवृत्ति ऐसे नाटकों में और भी उभर आयी है, जिन में कल्पना के लिए अधिक स्थान मिला हो। "अंधकार" एकांकी" की रंगसूचनाएं काव्य की कल्पनाओं से भरी हुई है ----

" स्वर्ग का एक कक्ष। दिव्य प्रकाश। समस्त वातावरण जैसे चन्द्र किरणों से निर्मित है। चारों ओर एक कोमल उज्ज्वलता छाई हुई है। कक्ष का रूप इन्द्रधनुष के छोटे-छोटे टुकड़ों से बना हुआ है। सामने दो वातायन मयूर के फैले हुए पुच्छाकार के ढंग के हैं। उन से आकाश-गंगा की धवल राशि नेत्र-कोरकों की भांति वक्र दीख रही है। स्फटिक मणि के बने हुए दो दो हंस वातायनों के दोनों ओर सजे हुए हैं जिन की अरुण चंचु में मान-सरोवर के लाये हुए अरुण कमल हैं ---- उन पर ओस की भांति मोतियों के दाने ------------ एक वातायन खुला हुआ है जिस से वायु गति दीख रही है। दूसरे वातायन पर किरणों का धवल वस्त्र है जो भैरव राग की भांति मंद गति से हिल रहा है।"

इस कवितापूर्ण प्रतिन्यास के अनुसार रंगमंच को अलंकृत करने के लिए उन उपकरणों का उल्लेख किया गया है ~~जिन से उस तरह का दृश्याभास प्रस्तुत किया गया है~~ जिन से उस तरह का दृश्याभास प्रस्तुत हो सके। स्वर्ग के वातावरण की सृष्टि करने के लिए उपर्युक्त वर्णन के अनुकूल रंगमंच को अलंकृत करना चाहिए। डा. वर्मा ने इस के लिए यह सूचना भी दी है --- " दिव्य प्रकाश के लिए नीले और हरे रंग की बिजली की रोशनी अपेक्षित होगी इन्द्रधनुष के छोटे छोटे टुकड़ों का आभास उत्पन्न करने के लिए पर्दों पर रंगीन स्लाइड का बिम्ब फेंका जा सकता है। वातायन के पीछे आकाश गंगा का आभास वस्त्र के पीछे बिजली के प्रकाश की व्यवस्था हो सकती है। नीलम और मूंगे के आसन के लिए क्रमश: नीले और लाल वस्त्र से काम चल सकता है।"

इन सूचनाओं के अनुसार स्टेज के अलंकृत करने पर भी यह संदेह है कि वांछित प्रभाव (effect) उपलब्ध होता है कि नहीं ? इस प्रकार के अलंकरण सिनेमा में आसानी से किये जा सकते है । जो भी हो, श्री रामनाथ सुमन के कथनानुसार यह सत्य है कि स्वर्ग-कक्ष के ववव ववव वातायन का मयूर के फैले हुए पुच्छाकार के ढंग का होना तथा उस पर किरणों के धवल वस्त्र का भैरव राग की भांति मंद गति से आन्दोलित होना ---- हमारी स्वर्ग संबन्धी कल्पना की ही अपेक्षा रखता है । इस प्रकार के प्रतिन्यास से डा. वर्मा ने परिस्थितियों कोवास्तविक और तीव्रतम अनुभूतियों हमारे सम्मुख साकार उपस्थित कर दी है । (०)

वास्तव में इसतरह के प्रतिन्यासों से निर्देशकों को उतना लाभ नहीं होता जितना कल्पनाशील पाठकों को होता है । पाठक अपनी कल्पना- चक्षुओं से इन कवित्वपूर्ण संकेतों का आनन्द उठा सकते है । इसी कारण से डा. वर्मा ने यह स्वीकार करते हुए कहा है कि " अभिनय केलिए प्रतिन्यास में आई हुई काव्य की कल्पनाएं छोडी जा सकती हैं । " डा. वर्मा ने ऐसे प्रतिन्यास भी लिखे हैं जो अभिनय के लिए अधिक सहायक होते है और नाटक के निर्देशक और नटों का पथ प्रदर्शन करते हैं । नाटकीय संकेत कथावस्तु के उन तत्वों के चित्रण में भी सहायक होते है जिनको कथोपकथन उद्धार नहीं कर सकता ।

" पृथ्वी का स्वर्ग " एकांकी में दुलीचन्द की घबराहट का वर्णन करते हुए डा० वर्मा लिखते हैं --- अचल के जाने के बाद थोडी देर तक दुलीचन्द केशव मुरारी, केशव मुरारी गुनगुनाता है । फिर दरवाजे तक जाकर देखता है । कहता है ------ " कोई नहीं । गया । सीधा लडका है । समझा न ? अब जरा देख लूं । " शीघ्रता से उठता है और सन्दूक खोलता है । ऊपर का हरा दुशाला निकालने के बाद नोटों के बण्डल निकालता है । उन्हें गिनता है । एक बण्डल हाथ में लेकर ---- " एक हजार -------- दो हजार , चार हजार , पांच हजार, सौ और ---और ----यह पांच सौ, पांच हजार । कुल पांच हजार । पांच हजार न ? हूं, चार हजार पांच सौ ---- कम्बख्त इन कमटेक्स वालों की वजह से बैंक में जमा भी नहीं कर सकता । पांच हजार ------ और कुछ तो नहीं है ? " इतने में किसी के आने का खटका होता है । " ए० ---- हूं ------ " कहता हुआ शीघ्रता से नोट समेटने की कोशिश करता है । शीघ्रता से बोल उठता है ---- हूं, हूं, जरा वहीं रहना, वहीं रहना -------- मैं ---- मैं कपड़े बदल रहा हूं ---- मैं जरा कपड़े बदल रहा हूं । शीघ्रता में उसी हरे दुशाले में नोट समेट कर तह में अन्दर तक सरका कर सन्दूक में बन्द करता है । फिर ताला बन्द कर कुर्सी पर बैठता है ।

(०) —पाकमित्रा भूमिका पृ० १२ श्री रामनाथ सुमन

इस में कितनी रहस्यात्मकता, कितनी आत्म तुष्टि कितनी अबराहट व्यंजित हुई है ! जब एक ही पात्र रंगमंच पर उपस्थित रहता है और कथोपकथन उस की मानसिक उथल पुथल को व्यंजित करने में असमर्थ रहते हैं तो इस तरह के प्रतिन्यास नाटककार के उद्देश्य को सफल करने में सहायक सिद्ध होते हैं । उपर्युक्त प्रतिन्यासों में मानसिक भावना का सजीव विश्लेषण कितना सुन्दर हुआ है । एकांकी के ऐसे स्थल उसको शाश्वत बनाये रखते हैं ।

जब नाटकीय संकेतों का प्रयोग कथोपकथनों के साथ साथ एकांकीकार करता है तो उस की प्रेषणीयता बढ़ जाती है । डा. वर्मा ने इस पद्धति का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है । " औरंगजेब की आखिरी रात " में औरंगजेब की मानसिक व्यथा तथा उस की भाव भंगी का वर्णन कथोपकथन के साथ वाले प्रतिन्यास में सुन्दर ढंग से किया गया है ।

आलम:---- (कांपते हुए स्वर में) कौन -----? अब्बाजान! (आंखें फाड़कर) तुम ? ----- जीनत हो ? अब्बाजान कहां गये ? अभीतो यहां आये थे ! (सोचता हुआ) जर्द था उन का चेहरा ------- आंखों में आंसू थे में अंसू ? उन्होंने हमारे सामने घुटने टेक दिए और कहा ---- शाह शाहे आलमगीर ! हमें हमारा बेटा औरंगजेब वापस कर दो ----- । बादशाही लिबास में हमारा बेटा खो गया है ---- । उसे हमें वापस कर दो ------ (कुछ ठहरकर) लेकिन जीनत ! वह बेटा कहा है ? उस ने तो अपने अब्बाजान को कैद किया है । (इसी समय कमरे में टंगा हुआ पक्षी अपने पंख फड़फड़ा उठता है । आलमगीर उस की तरफ चौंक कर देखता है) और यह परिन्दा अपने पर फैलाकर हम से कुछ कह रहा है --- ? क्या कहेगा ? इसे भी तो हम ने सोने के पिंजड़े में कैद किया है ! (जीनत की ओर अगृह से) जीनत ! इस पिंजड़े का दरवाज़ा खोल दो । (जीनत पिंजड़े का दरवाजा खोलती है). उसे निकालो । (जीनत परिन्दा पकड़ कर निकालती है) उड़ा दो उसे (जीनत उसे खिड़की से बाहर उड़ा देती है । आलमगीर उस के उड़ने की दिशा में कुछ देर देखकर संतोष की गहरी सांस लेता है ।) आ ------ जा ------ वा!---- (कुछ रुककर) हम अब्बाजान को इस तरह आज़ाद नहीं कर सके । हिन्दुस्तान के बादशाह को इस परिन्दे की किस्मत भी नसीब नहीं हुई । "

कोष्ठकों में दिये गये प्रतिन्यास अभिनेताओं के अभिनय में कितने ही सहायक होते हैं । लंबे लंबे विस्तृत भाषण रचना को असफल बना देते हैं । लंबे भाषण के बीच में पात्र की मनोदशा पर प्रकाश डालने वाले प्रतिन्यास रखे जाने पर भावों का सुन्दर अभिव्यंजन हो जाता है । पात्रों की शारीरिक क्रियाओं तथा भाव भंगिमाओं का संकेत देना अत्यन्त आवश्यक है ।

डा. वर्मा के एकांकी नाटकों में इस तरह के संकेत अधिक संख्या में मिलते हैं। " ओंठ पर उंगली रखकर " " उत्सुकता से किन्तु कुछ धीमे स्वर में, " " कुछ तीव्रता से, " " हंसकर, " " गहरी सांस लेकर, " " अर्द्धनिद्रित हुए स्वर में, " " विह्वल होकर " " बात उड़ाते हुए ", द्रवित होकर " दृढ़ता से " आश्चर्य से। " " घबड़ा कर " चीख कर " चैतन्य होकर, कांपते हुए स्वर में " " प्रसन्नता से, " " शून्य दृष्टि से " आदि निर्देशों से पात्रों की मानसिक आवेशावस्था का परिचय दिया गया है। रंगमंचीय सूचनाओं के द्वारा डा. वर्मा ने अनेक प्रयोजनों की प्राप्ति की है। इन सूचनाओं से कथावस्तु के अनुकूल वातावरण का अंकन हुआ है। निर्देशकों का रंगमंच को अलंकृत करने में इन सूचनाओं से सहायता मिली है तो अभिनेताओं को अभिनय करने में ये सूचनाएं सहायक हुई हैं। पात्रों के चरित्र के रेखाचित्र भी इन्हीं सूचनाओं के द्वारा खींचे गये हैं। इन के एकांकी संकेतों के कारण प्रभावोत्पादक तथा सुपाठ्य भी बन गये हैं। डा. वर्मा ने कुछ नाटकों के प्रारंभ में रंगमंच की व्यवस्था के मान-चित्र भी प्रस्तुत किये हैं जो निर्देशकों को निर्देशन कार्य में सहायक होते हैं। इस तरह डा. वर्मा रंगमंच तथा अभिनय के संबंध में सदा सतर्क रहे हैं। मंच के संपर्क के बिना किसी नाटक की उत्कृष्टता का निर्णय करना गलत है। नाटक में अभिनय तत्व को अधिक प्रधानता देनी चाहिए। अर्थात् उस का नाटक में प्रथम स्थान है और साहित्यिकता का स्थान दूसरा है। (०) किसी भी नाटक का मूल्यांकन करते समय आलोचक को अभिनेय तत्व तथा साहित्यिकता दोनों को दृष्टि में रखना र-- चाहिए। डा. वर्मा के एकांकियों का प्रणयन इन दो तत्वों के साथ किया गया है। (१)

---

(०) मेरे विचार से किसी भी भांति नाटकों की उत्कृष्टता का निर्णय बिना मंच के संपर्क के नहीं हो सकता। यदि नाटक प्राण है तो मंच उसका शरीर है। जो नाटक रंगमंच पर खेले जाने पर अपना बहुत सा सौंदर्य खो देते हैं वे साहित्य की दृष्टि से कितने ही अच्छे क्यों न लिखे गये हो, पर अच्छे नाटकों की श्रेणी में रखने के सर्वदा अनुपयुक्त हैं। रंगशाला में नाटक का महत्व मंच पर खेले जाने पर है, साहित्यिक ख्याति से नहीं। वहां नाटक प्रथमत: अभिनय करने की वस्तु है, फिर साहित्य की उज्ज्वल रत्न - राशि। डा. रामकुमार वर्मा -- " रंगमंच " साहित्य सुषमा पृ १३४.

(१) डा. वर्मा ने रंगमंच पर पर्याप्त दृष्टि रखते हुए भी कल्पना की उड़ानें अवश्य भरी है जिस में अंत: संघर्ष के बाह्य प्रदर्शन के द्वारा अभिनय की सफलता के साथ ही अभौतिक दिव्यता की भी सृष्टि हो गई है, संघर्ष की तीव्रता, कथोपकथन की चारुता के साथ ही आप के एकांकियों में काव्यत्व की रसिकता भी मिलती है। ---र-- प्रो. गजानन शर्मा --- हिन्दी रंगमंच की नयी दिशाएं -- साहित्य के पृष्ठ -- ११

नाटक लिखने के पहले उन्हें रंगमंच का ध्यान रहता है। या दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि रंगमंच ही उन से साहित्यिकता से युक्त कथावस्तु की मांग करता है। उनका यह कथन एकांकी के अभिनेय तत्व की विशिष्टता पर प्रकाश डालता है ------" म०००० मच पर जीवन को क्रियाशील बनाने की अद्भुत शक्ति एकांकी में है, जो युगों की टीस, आंसुओं में और युगों का विनोद एक मुस्कान में प्रकट कर आप के सामने जीवन का रहस्य प्रदर्शिनी की भांति सुसज्जित कर देता है। (३)

डा. रामकुमार वर्मा ने अपने लेखन-कार्य के आदर्शों को अन्य लेखकों के सम्मुख सृजन कृतियों के रूप में और आलोचनात्मक लेखों के रूप में (अपने एकांकी - संग्रह की भूमिकाओं में) रखा है। इन के कारण रंगमंचीय एकांकियों की परंपरा स्थिर हुई और अन्य एकांकीकारों ने भी अभिनेय तथा साहित्यिकता से युक्त एकांकियों का सृजन किया है। रेडियो एकांकियों की विशेषताएं :--- घटना प्रधान नाटक की अपेक्षा विचार प्रधान या वातावरण प्रधान नाटक रेडियो के लिए अधिक उपयुक्त, अधिक सफल और प्रभावोत्पादक होते हैं। इस का कारण यह है कि अरूप और सूक्ष्म जितनी सफलता से रेडियो द्वारा प्रसारित हो सकता है उतना रूपायन्त और स्थूल नहीं। दृष्टि को रूपायन्त और स्थूल प्रभावित करती है, कल्पना को सूक्ष्म। इस के अतिरिक्त रेडियो नाटक के लिए विस्तारपूर्वक विषय की अपेक्षा प्रगाढ़ (intense) और सघन (concentrated) विषय अधिक सफल होते हैं। अत: मनोवैज्ञानिक और समस्याप्रधान विश्लेषणात्मक नाटक रेडियो के लिए अपेक्षित है। (४) डा. वर्मा के रेडियो एकांकियों का विवेचन उपर्युक्त सिद्धान्त के आधार पर करने के लिए यह देखना आवश्यक है कि उन के एकांकियों के इतिवृत्त के अनुकूल पृष्टभूमि में पात्रों की मानसिक स्थिति किस भांति निर्मित होती है ? उन के एकांकियों में, चाहे उनका इतिवृत्त राजनीति से संबंधित हो या परिवार से संबंधित हो, चाहे उसका निर्माण आर्थिक दृष्टिकोण से किया गया हो या ऐतिहासिक दृष्टिकोण से किया गया हो, पात्रों की स्थिति प्राय: कुछ इस तरह बनती है। इतिवृत्त के अनुकूल पृष्टभूमि में पात्रों में भयंकर अन्तर्द्वन्द्व होता है और संस्कारों के अनुकूल प्रभाव हों तो पात्र विलासी होते हैं। इन दोनों के आधार पर अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण और उस चित्रण से कुतूहलता की जागृति और उस कुतूहलता की परिसमाप्ति चरमसीमा में होती है।

---

(३) डा. रामकुमार वर्मा ऋतुराज पृ. १३

(४) रेडियो नाटक पृ. १०,११

यदि नाटक का इतिवृत्त ऐतिहासिक हो तो उस के लिए सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का निर्माण किया जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि उन के नाटकों की सृजना के मूल में मानसिक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण का अधिक स्थान है। अतः इन के नाटक रेडियो के लिए अधिक उपयुक्त बन पड़े हैं जो श्रोताओं को एक ओर विचार स्रवंति में डुबो देते हैं तो दूसरी ओर रसानंद प्रदान करते हैं। प्रतिशोध, तैमूर की हार, दुर्गावती, कलंक रेखा, दीपदान, भाग्य नक्षत्र, कृपाण की धार, रात का रहस्य, मर्यादा की वेदी, कादम्ब या विष, स्वर्णश्री भरत का भाग्य, आदि एकांकी उदाहरण के रूप में लिये जासकते हैं। इन का सृजन उपर्युक्त पद्धति के अनुसार हुआ है।

रेडियो एकांकी के लिए प्रतिन्यासों की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी रंगमंचीय एकांकी के लिए। इस में श्रव्य के साधनों पर ही अधिक ध्यान देना पड़ता है इस के लिए ऐसे संकेत दिये जा सकते हैं जो नाटक के मुख्य पात्रों के मनोविज्ञान पर प्रकाश डालते हुए श्रोताओं के मन में कथावस्तु के प्रति एक स्वस्थ धारणा बना देते हैं ऐसे संकेत नाटक के पहले पढ़े जा सकते हैं। डा. वर्मा ने अपने रेडियो एकांकियों के आगे इस तरह के संकेत दिये हैं। " प्रतिशोध " एकांकी के आगे यह संकेत प्रस्तुत किया गया है --- " अहंकार से प्रतिभा उसी तरह कुंठित हो जाती है जैसे भयानक भूकंप से प्रकृति की सहज शोभा नष्ट हो जाती है। अतः कलाकार के लिए आवश्यक है कि वह अहंकार के आघातों से प्रतिभा की रक्षा करे। इस प्रतिभा का वर्णन यदि माता के कंठ से हो तो मैं कहूंगा कि वह वीणापाणि के संगीत का पर्याय है। माता के मनोविज्ञान का संगीत संसार के समस्त तर्कों के ऊपर प्रवाहित होता है जैसे कठोर चट्टानों के ऊपर से निर्मल जल-धारा तरंगित होती रहती है। भारवि की प्रतिभा में संभवतः माता के स्निग्ध हृदय की झांकी थी। जननी! आशीर्वाद दो कि तुम्हारे वात्सल्य से संचालित भारवि की प्रतिभा हिन्दी के कलाकारों को भी प्राप्त हो। "

इस संकेत में एकांकी के मुख्य उद्देश्य को स्पष्ट किया गया है। " कादम्ब-या विष " एकांकी का संकेत न केवल पात्रों के मनोविज्ञान तथा कथावस्तु के मुख्य उद्देश्य को हमारे सामने प्रस्तुत करता है वं अपितु उस में एकांकीकार ने जागरूक और सतर्क रहने का उपदेश दिया है।

सौन्दर्य और विलास के आवरण में महत्वकांक्षा उसी प्रकार पोषित होती है जैसे मखमली म्यान में तलवार शयन करती है। गुप्त साम्राज्य की कला और वैभव संपन्नता में अनन्त देवी की हिंसा जिह्वा सर्पिणी का दंश है। स्कन्दगुप्त का निर्वासन और पुरगुप्त का युवराज - पद एक ही अभिसन्धि की दो शाखाएं हैं। जब स्त्री का आत्मसमर्पण पुरुष के मनोविज्ञान का अंग बनता है तो जीवन मृत्यु के सामने घुटने टेक देता है। कुमार गुप्त के लिए कादम्ब की मादकता ही विष की मूर्छा बन गई।

पुरूष । स्वामी बन कर सौन्दर्य की सराहना कर, सेवक बन कर आत्म-समर्पण न कर । "

कुमार गुप्त ने छोटी रानी अनंत देवी के सौन्दर्य का सेवक बनकरर आत्म - समर्पण किया है । इसी आत्मसमर्पण के कारण उस की विवेक बुद्धि लुप्त हो गई है । अपने संकेतों के अनुसार महाराज को नचाने की शक्ति अनंत देवी में इसलिए प्रबल हुई कि वह उस की दूसरी पत्नी है और साथ ही साथ सौन्दर्य की निधि भी है । अनंतदेवी स्वयं महादेवी बनने की आकांक्षा रखती है और अपने पुत्र पुरगुप्त को सिंहासन पर बिठाना चाहती है । कादम्ब में विष घोलकर कुमार गुप्त को अपने हाथों से पिलाती है और उस की मूर्छित अवस्था में हस्ताक्षर करवा देती है जिस से पुरगुप्त को युवराज पद प्राप्त हुआ और स्कन्दगुप्त को निर्वासन । अनंत देवी और कुमारगुप्त के मनोविज्ञान की रूप रेखा इस एकांकी में अंकित की गई है । जब स्त्री विगत-विकार हो अपने स्वामी के सामने आत्म समर्पण करती है तो जीवन का विष भी अमृत के रूप में परिवर्तित होजाता है । अगर इस के विरुद्ध स्त्री में पुरूष की अधिकार लिप्सा जागृत होवे, और पुरूष अपने पद से च्युत होकर, स्त्री का सेवक बने तो अमृत भी विष बन जाता है । स्त्री प्राकृतिक दृष्टि से अत्यंत कोमल है और वह अहं को त्याग कर अपने स्वामी और संतान के लिए आत्म-बलिदान कर सकती है । पुरूष को कभी यह भूलना नहीं चाहिए कि उस में स्वामी बनने की क्षमता है । डा. वर्मा ने कथा वस्तु को इसी दृष्टिकोण से एकांकी का रूप प्रदान किया है और संकेत में पुरूषों को चेतावनी भी दी है ।

इस तरह के संकेत रंगमंचीय एकांकियों के लिए उपयुक्त या उपयोगी नहीं होते । रेडियो पर नाटक के प्रारंभ में इन के पठन से प्रभाव उत्पन्न होता है । श्रोता लोग उन विषयों पर चिंतन करते हुए एकांकी का श्रवण करते हैं और प्रतिपादित विषय की सत्यता की परीक्षा करते है ।

रेडियो नाटक में भाषा और ध्वनि का प्रमुख स्थान है । इस में प्रत्येक ध्वनि व्यंजना से संपन्न होना आवश्यक है । क्योंकि प्रत्येक शब्द उच्चारण मात्र से श्रोता में विशेष भाव जागृत करता है । ध्वनि और भाषा के अद्भुत चमत्कार के साथ साथ रेडियो नाटकों में रोचकता का होना भी अनिवार्य है । इस के अभाव में भाषा और ध्वनि के चमत्कार निरर्थक हो जाते हैं । डा. वर्मा के एकांकियों की भाषा पर विवेचन करते समय हम ने उस की प्रमुख विशिष्टताओं का उल्लेख किया है । यहां केवल रेडियो एकांकियों की भाषा पर विचार करना है । सप्त किरण, रजत रश्मि, दीपदान, ऋतुराज आदि संग्रहों में संग्रहीत एकांकियों की भाषा इस दृष्टि से अवलोकनीय है ।

सामाजिक दृष्टिकोण से रचित, हास्य रस से परिपूर्ण एकांकी फैक्ट हैट की भाषा में वह व्यंजकता है जो विनोद की सृष्टि करने में समर्थ है। इस नाटक के पात्र आनन्द, शीला और अविनाश अपने अपने संस्कार तथा स्वभाव के अनुकूल शब्दावली का प्रयोग करते है। शेष दो पात्र शंभू तथा खोमचेवाला मनकू अपने ढंग की निराली भाषा बोलते हैं। परिस्थितिजन्य विनोद के अतिरिक्त इन पात्रों की भाषा से भी हमारा काफी मनोरंजन होता है।

शंभू शीला को समझाता है ---- " अब सरकार ई मां कौन बात ? जब हम तरकारी -- उरकारी लिये के बरे बजार जात है, तो आपन साफा भी नाहीं बांधत, तो अंगौछा रहा तो उहि मां लांध लीन और ते अंगौछा नाहीं था, तौ अपन साफा मां बांध लीन। अपना साहब साफा वाफा बंधते नाहीं। टोपी उन के रही ! हम ओही मां आलू धारी दीन सजाय के। बिनास भैयो ऐसन करत हैं। "

काकु ००००० ध्वनि के प्रयोग से व्यंग्य की कितनी ही सृष्टि होती है। डा. वर्मा ने कंठस्वर के आरोह-अवरोह की मात्रा का ध्यान रखा है। आनंद और शीला के कथोपकथन इस के प्रमाण हैं। शीला व्यंग्य भरे वचनों में कहती है है --" क्यों डसा है उस नागिन ने आपको ?" फिर वही बात ? क्या मैं घर से चली जाऊं ? " " अब आपने अपने ही हाथों मूंगफली रक्खी अपने हैट में।" शीला अपने क्रोध को शंभू पर प्रकट करती है। जब शंभू बड़े उत्साह से टोपी में आलू रखने की बात कह सुनाता है तो शीला व्यंग्य से कहती है ----" तू ने अच्छा उठाया। " इस को वाणी के माध्यम से सुनने पर इस की प्रेषणीयता का महत्व समझ में आता है। रेडियो पर प्रसारित करने के लिए ऐसे ही कथोपकथन उपयुक्त ठहरते है।

इसी तरह अन्य एकांकियों में भी जहां विनोद व हास्य की सृष्टि की गई है वहां व्यंग्य का सहारा लिया गया है। स्त्रियों के वचनों की काकुवक्रोक्ति कितनी ही सुन्दर लगती है। " छोटी सी बात " एकांकी की उमा के मुंह से वैसी ही उक्तियां निकलती हैं ------" मैं श्रीमान के कमरे में आ सकती हूं। " "०४०००००" श्रीमान के पढ़ने में बाधा तो नहीं पड़ जायेगी ? " मैं श्रीमान से कोई मज़ाक सुनने नहीं आई हूं।

जिन एकांकियों में गंभीर विषय का प्रतिपादन हुआ है उसकी भाषा भी गंभीर और सशक्त है। क्रोध, दुःख हर्ष विषाद, आदि मनोवेगों की अभिव्यक्ति के लिए इतनी सरल भाषा, का प्रयोग किया गया कि श्रोताओं को नाटक के पात्रों की मानसिक स्थिति का परिचय होकर० जाता है। " भरत का भाग्य " एकांकी में राम के आगमन की सूचना पाते ही भरत, कौसल्या माण्डवी आदि

के हर्षोल्लास की व्यंजना ध्वनि-कौशल के द्वारा हुई है । हर्ष के आवेग में एक ही वाक्य की पुनरावृत्ति कितनी ही बार हो जाती है । भरत उमंग से कहते जाते हैं कि मेरे प्रभु आ रहे हैं । महाप्रभु राम आ रहे हैं । शत्रुघ्न ! भाई राम आ रहे हैं । भाई राम आ रहे हैं । उन के स्वागत की तैयारी करो ---- तैयारी करो । " यह कथोपकथन स्वाभाविक भी है और ध्वनि माध्यम के द्वारा इस की प्रेषणीयता भी बलवती है । इस तरह इन के नाटकों में ध्वनि-माध्यम का सुप्रयोग हुआ है ।

डा. वर्मा संकलन त्रय के निर्वहण को एकांकी के लिए अत्यन्त आवश्यक मानते हैं । पर रेडियो नाटक के लिए तीनों के संकलनों का विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता नहीं रहती । देश तथा काल संबंधी प्रतिबंधों से यह मुक्त है । डा. वर्मा का कथन है कि चाहे संकलन त्रय का निर्वाह होवे या न होवे, दोनों रेडियो नाटक के लिए समान है । इन का निर्वहण न होने पर भी प्रभाव में कोई अंतर नहीं पड़ता ।

प्रसाद की कला, "ज्यों की त्यों धरि दीनि चदरिया", "स्वागत है ऋतुराज" आदि एकांकियों में प्रतिन्यासों के द्वारा विषय वस्तु की कड़ियां जोड़ी गई है । प्रसाद की कला में प्रसाद के नाटकों के स्वर बोलते हैं । प्रसाद की नाट्य कला की विशिष्टताओं इस रूप से प्रकट की गई हैं । प्रथम तीन नाटकों सज्जन, प्रायश्चित , और कामना का परिचय प्रतिन्यास में इस तरह दिया गया है । यह संस्कृत के बाग का पौदा है । इस में नान्दी पाठ और प्रस्तावना के पत्ते हैं गद्य और पद्य और की कलियां और फूल है । इन कलियों में ब्रजभाषा की सुगंध है । विदूषक भौंरे की तरह गुनगान कर रहा है । इस में अलंकारों के रंग है और रस का मकरंद भरा हुआ है । ---- इस प्रतिन्यास के पश्चात् सज्जन नाटक के पात्र स्वयं आकर बोलते हैं । दूसरी झांकी को प्रतिन्यास में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है ---" इस में पश्चिमी नाट्य कला आ गई है, लेकिन यह कला अधिकतर " एलिजबेथिन " काल की कला से भरपूर है । इस में स्वगत कथन और अभिनयात्मकता का विशेष प्रभाव है । इसका सब से अच्छा उदाहरण " अजातशत्रु " है । अजातशत्रु के एक चित्र के प्रस्तुतीकरण के पश्चात् तीसरी झांकी का प्रतिन्यास दिया गया है । " तीसरी झांकी में पश्चिम की नाट्य कला का स्वतंत्र प्रभाव है । इस में प्रसाद की मौलिकता अपनी अंतिम सीमा पर पहुंची हुई है । उस में मनोवैज्ञानिक सरसता का पूर्ण उदय हो गया है । जैसे पूर्णमासी का चांद हो । स्कन्दगुप्त नाटक के दृश्यों के प्रस्तुतीकरण के उपरान्त अंतिम प्रतिन्यास में प्रसाद के नाटकों का सार तत्व है ----

जीवन कैसा है, यह प्रसाद ने बड़ी सुन्दरता से पात्रों के मुख से कहला दिया है । इन के नाटकों में स्त्री सब से बड़ी शक्ति है जिस के बल पर पुरुष कभी जीवन नीचे गिरता है कभी ऊपर उठता है, और जब स्त्री ऊंचे आदर्श की होती है तो वह सारे जीवन पर प्रकाश डालती है ।

करुणा की रागिनी में गूंज कर उस की वाणी जीवन को उच्च बनाने का अमर संदेश देती है। प्रसाद के पुरुष -- पात्रों में अगर बल है तो स्त्री पात्रों में तेज। और देवसेना तो सारे भारतीय साहित्य को उन की अमर देन है।

इसी भांति " स्वागत, हे ऋतुराज " में भी निर्देशक तथा काव्य समीक्षक के द्वारा परिचय प्रस्तुत करते हुए जयदेव, विद्यापति, सूरदास, मीरा। सेनापति, देव पद्माकर, हरिश्चन्द्र रत्नाकर, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी की वसंत संबंधी कविताओं को क्रम बद्ध रूप से एकांकी का रूप दिया गया है। "ऋतुराज" के स्वागत में हिन्दी के प्रतिनिधि कवियों ने जो कविता प्रसून समर्पित किये थे, उन्हीं प्रसूनों की माला ने रेडियो एकांकी का रूप धारण किया है। रंगमंच पर इस प्रकार के नाटकों का कोई अस्तित्व नहीं रहता। श्रव्य कला गत्यात्मक है। इसी कारण से उपर्युक्त ढंग के एकांकियों की सफलता ध्वनि माध्यम के द्वारा संभव हुई है।

रंगमंचीय एकांकी में अनेक दृश्यों की व्यवस्था करने पर प्रस्तुतिकरण में असुविधा हो जाती है। रेडियो एकांकी में दृश्यों की व्यवस्था अधिक से अधिक कर सकता है। केवल उस को ध्यान देना पड़ता है कि वस्तु के एक्य में भंग न होवे। डा. वर्मा के रंगमंचीय एकांकी जहां एक ही दृश्य में अपने संपूर्ण कथानक को मिटाकर प्रभाव डालते हैं वहां उन के रेडियो एकांकियों में अंत दृश्यों की कल्पना की गई है। राम के आगमन का समाचार पाकर भरत हर्ष से पुलकित होते हैं और उन के स्वागतार्थ प्रबंध करते हैं। प्रथम अन्तर्दृश्य में गुरु वशिष्ट का आशीर्वाद तथा आज्ञा लेने जाते हैं। दूसरे अन्तर्दृश्य में कौशल्या मां से यह समाचार सुनाने जाते हैं। तीसरे में शत्रुघ्न के साथ इसी संबंध में वार्तालाप करते हैं। चौथा अन्तर्दृश्य नन्दि ग्राम का है जहां राम आकर सब से मिलते हैं।

डा. वर्मा ने रेडियो एकांकी भी अधिक संख्या में लिखे हैं। इन के अनेक रंगमंचीय एकांकी भी रेडियो पर प्रसारित किये गये हैं। "औरंगजेब" की आखिरी रात " अनेकबार आकाशवाणी दिल्ली, लखनऊ, और पटना केन्द्रों से प्रसारित हुआ है। "पुरस्कार", "कलाकार का सत्य", "फैल्ट हैट" "छोटी सी बातें", और आखों का आकाश, सफलतापूर्वक, प्रसारित किये गये हैं। तैमूर की हार, इलाहाबाद और रेडियो एकांकियों के रूप में भी मान्य हुए हैं। तैमूर की हार, इलाहाबाद से २७ नवम्बर १९५० प्रतिबोध २४ जुलाई १९५० , दुर्गावती २८ जून १९५१, मे २७ मार्च १९५१ कलंकरेखा आकाशवाणी दिल्ली, रेडियो नाट्य - महोत्सव में २७ मार्च १९५१ को प्रसारित हुए हैं। इस के पश्चात् १९५१ दिसंबर में प्रकाशित ऋतुराज, संग्रह के एकांकी कादम्ब या विष, स्वर्ण श्री, भरत का भाग्य, ज्यों की त्यों धरि दीनि -- वदरिया, स्वागत हे ऋतुराज, -- विशेष रूप से

रेडियो शिल्प के अनुसार रचे गये हैं। " कामकन्दला " की रचना रेडियो पर प्रसारित करने के उद्देश्य से भी की गई है पर विशेष रूप से फिल्म के उपयुक्त रचा गया है। डा. वर्मा ने रंगमंचीय एकांकी शिल्प के संबंध में जिस प्रकार गंभीरता से विचार किया है और उस के शिल्प का संविधान स्थिर किया है उसी प्रकार रेडियो एकांकी शिल्प के संबंध में भी विस्तार से लिखा है। शिल्प संबंधी विशिष्टताओं का आकलन करने के पश्चात् नाटक रचना में प्रवृत्त होने पर सफल कृतियों की रचना की जा सकती है।
डा. वर्मा की सफलता के मूल में यही रहस्य है।

डा. बबू रामकुमार वर्मा के किसी भी एकांकी की विवेचना में करें, उस में या तो रेडियो के लिए उपयुक्त अभिनेय तत्व मिलेंगे, या रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक नाटकीय तत्व प्राप्त होंगे। अभिनेयता उन के नाटकों की प्राण शक्ति है जिस के संचार से एकांकी में गतिशीलता और प्रभावोत्पादक सौन्दर्य का समावेश हो जाता है।